ईश्वरद्रोही

पांडेय बेचन शर्मा

ईश्वरद्रोही

https://www.hindiadda.com/ishvaradrohi/

एक वर्ष पहले की बात है। कलकत्ता के मछुआ बाजार की एक गली में एक भिखारिन चली जा रही थी। उसके तन पर गन्दा और कई स्थानों पर बुरी तरह से फटा हुआ पुराना चूड़ीदार पायजामा और उसी तरह का एक कुर्ता था। माथे पर चद्दर के स्थान पर दो हाथ लंबा और हाथ भर चौडा कपड़ा - कपड़ा क्या, चीथड़ा - था। प्रात: नौ-दस बजे का समय था। व्यापार-जीवी जन अपने अपने धंधे की धुन में इधर से उधर और उधर से इधर आ-जाकर गली के शांत हृदय पर अशांति का सिक्का बैठा रहे थे।

एक नवयुवक मुसलमान को अपनी बगल से गुजरते देख भिखारिन ने सवाल किया, 'खुदा के नाम पर बड़े मियाँ कुछ रहम हो।'

'क्या**?**' नवयुवक ने जरा गौर से सवाल करने वाली की ओर देखा। वह युवती थी।

'बड़ी भूख लगी है,' युवक को रुकते देख भिखारिन ने अपने सवाल को दुहराया, 'कल से ही कुछ खाने को नहीं मिला है। कुछ मेहरबानी हो, खुदा आपको सलामत रखे।'

'घर पर चलेगी**?**' युवक ने भिखारिन से ऐसे स्वर से पूछा जिसमें दया से अधिक शोहदापन था।

युवक की दुष्टता-भरी आँखों और मुसकराते हुए मुख को देखकर भिखारिन के कपोलों पर सुर्खी दौड़ गयी। उसने विनम्र भाव से उत्तर दिया, 'यहीं कुछ रहम कर दीजिए।'

'घर पर चल तो सब कुछ किया जा सकता है, यहाँ नहीं। पास में पैसे नहीं हैं।'

'तो जाने दीजिए। किसी दूसरे दाता का दरवाजा खटखटाऊँगी। **(**सामने एक मकान की ओर अँगुली दिखाकर**)** यह मुसलमान का घर है?'

'तो मेरे घर पर न चलेगी**?**'

'नहीं। जरा बतला दीलिए, यह किसी मुसलमान का घर है**?**'

नवयुवक मुसलमान ने भिखारिन को घर पर चलने पर राजी होते न देख जरा चिढ़कर कहा, 'हाँ, जाओ। वहाँ तुम्हारी खातिर हो जाएगी। मुसलमान का घर है।'

युवक आगे बढ़ा। भिखारिन भी उस मकान की ओर बढ़ी। मकान का दरवाजा छूते ही खुल गया और सीढ़ियों का सिलसिला दिखाई पड़ा। एक बार क्षण-भर के लिए भिखारिन हिचकी, मगर फिर न जाने क्या सोचकर, धीरे-धीरे सीढ़ियों पर चढ़ने लगी।

सीढ़ियों के सिरे पर दूसरा दरवाजा दिखाई पड़ा जो खुला था। दरवाजे से सटा हुआ, साधारण ढंग से सजा एक कमरा था। आपस में सटी हुई दो-तीन चौकियों पर गद्दे और सफेद चादर बिछे थे, और उस पर मसनद के सहारे बैठा कोई नवयुवक कुछ पढ़ रहा था। युवक लम्बा-गोरा और सुन्दर था। उसकी अवस्था सत्तरह-अठारह वर्ष की मालूम पड़ती थी। भिखारिन दरवाजे के पास चुपचाप खड़ी होकर युवक की ओर देखने लगी, मगर युवक को इस युवती भिखारिन के आने की कोई खबर नहीं। इसी समय मकान के भीतर से आवाज आयी, 'राम ! बाहर जाना तो मुझसे कहकर जाना। मैं दरवाजा बन्द कर दूँगा।'

'अच्छा, बाबूजी!!' कहकर युवक ने अपनी गर्दन फेरी। दरवाजे पर जो नजर गयी तो देखा कि चीथड़ों में लिपटी हुई लक्ष्मी-सी सुन्दरी कोई स्त्री खड़ी है। यह रूप! यह वेश! ! माजरा क्या है? युवक बिना हिले-डुले चुपचाप उस युवती की ओर देखने लगा। युवती के कपोल रूखे थे, मगर थे गुलाबी। होंठ सूखे, मगर थे सरस! उसकी आँखों की चारों ओर कालिमा थी, मगर आँखें बोलती थीं। गन्दे और फटे कुरते और पाजामे के बाहर उसका चम्पक-वर्ण शरीर देखने से मालूम पड़ता था मानो सौन्दर्य फटा पड़ता है। क्षण-भर मुग्ध दृष्टि से उस भिखारिन के सौन्दर्य को देखने के बाद युवक को कर्तव्य का ज्ञान हुआ। वह जरा सँभलकर बैठ गया। उसने उस मुसकराहट के साथ, जिसे हृदय अधिक देखता है, आँखें कम, उससे पूछा - 'क्या है?'

उसी स्वर और उसी भाव से भिखारिन ने भी पूछा - 'तुम मुसलमान हो?'

भिखारिन का 'तुम' असभ्य था, धृष्ट था, मगर युवक को वह बड़ा ही प्यारा मालूम पड़ा।

उसने उत्तर दिया, 'मैं मुसलमान नहीं, हिन्दू हूँ। क्यों?'

'नहीं, तुम मुसलमान हो,' कहकर भिखारिन मुसकरा पड़ी।

युवक चौकी से नीचे उतर भिखारिन के सामने, दरवाजे के पास जा खड़ा हुआ और कहने लगा, 'आखिर तुम्हें चाहिए क्या?'

'भीख। पैसे!'

'तुम भीख माँगा करती हो? तुम्हारी जात क्या है?'

'देखते नहीं हो! मैं मुसलमान हूँ।'

'कहाँ घर है?'

'लखनऊ।'

'यहाँ कलकत्ता में क्या करती हो?'

'भीख माँगती हूँ।'

भिखारिन युवक के प्रश्नों का ढंग और उसके चेहरे का उतार-चढ़ाव देखकर हँसने लगी।

'कुछ देते हो?' भिखारिन ने युवक से पूछा।

'क्या लोगी?'

'जो दे दो।'

'अच्छा, जरा ठहरो। बाबूजी को बुलाता हूँ। वही देंगे।'

'तब मैं जाती हँ। तुम्हें कुछ देना-लेना नहीं है।'

भिखारिन एक सीढ़ी नीचे उतर गयी, मगर लीला से आँखें ऊपर चढ़ाकर। युवक ने उसे पुकारते हुए कहा, 'जाना नहीं, जाना नहीं। एक बार बाबूजी से पूछ लूँ, फिर तुम्हें कुछ-न-कुछ दूँगा। जरूर दूँगा।'

नवाबजादी

युवक भिखारिन को वहीं छोड़कर के भीतर गया और थोड़ी देर बाद एक दूसरे पुरुष के साथ लौटा। दूसरे पुरुष की अवस्था पचास वर्ष की मालूम पड़ती थी। उसके सिर के आधे से अधिक बाल सफेद हो गये थे। मुख पर बड़ी-बड़ी मूँछें और दाढ़ी थी। उसका चेहरा बड़ा रोबदार मालूम पड़ता था। वही युवक का 'बाबूजी' था।

भिखारिन को सिर से पैर तक कई बार देख लेने के बाद उन्होंने पूछा, 'तुम अकेली हो या तुम्हारे कोई और भी है?'

भिखारिन की नीचे झुकी हुई आँखें इस प्रश्न पर सजल हो गयीं। उसने गम्भीर होकर कहा, 'इस वक्त मैं दुनिया में अकेली हूँ।'

'तुम्हारा रूप साधारण भिखारिनों से भिन्न है। अनुभवी आँखें इस फटी अवस्था में भी तुम्हें भिखारिन मानने को तैयार नहीं हो सकतीं। तुम्हारे पिता-माता क्या करते थे?'

भिखारिन की आँखों से निकलकर पानी के दो छोटे टुकड़े उसके गुलाबी गालों पर चमकने लगे। युवक ने देखा, सौन्दर्य को जीवन मिल गया! वृध्द ने देखा ! रूप कविता करने लगा!

भिखारिन ने कहा, 'मेरे पिता-माता दिन में अपनी बदकिस्मती पर रोया करते थे और रात में मुँह छिपाकर - वेश बदलकर - पेट को भरने के लिए, भीख माँगा करते थे!'

'क्या वे हमेशा के भिखमंगे ही थे?'

'नहीं!' एक लम्बी साँस खींचकर भिखारिन ने कहा, 'हमारे दादा लखनऊ के एक नवाब थे। अवध से नवाबी का खातमा होने के बाद मेरे दादा ने अँग्रेजों का विरोध और लखनऊ के नवाब वाजिद अली का समर्थन किया था। वाजिदअली शाह के कैद हो जाने के पन्द्रह साल बाद दादा की मौत हो गयी। उस वक्त भी मेरे पिता के पास, हमारी जिन्दगी आराम से बसर करने भर को, काफी धन था। मगर पिता में नवाबों का खून था। उन्होंने पैसे को पानी के भाव बहाने का अभ्यास किया था। जब तक उनके पास धन था वे उसकी कुछ भी परवाह न करते थे। आखिर एक दिन हम एकदम भिखमंगे हो गये। दाने-दाने के मुहताज हो गये और हिन्दुस्तान के कोड़ियों नवाबों की तरह हो गये दरवेश। मेरे वालिद और वालदा पर जो-जो मुसीबतें गुजरी हैं उन्हें मैं आपको सुना नहीं सकी। मेरे तीन बड़े भाई और एक बहन एक टुकड़ा रोटी और 'चुल्लू-भर' पानी के लिए मर गये। तकलीफें झेलते-झेलते और भीख माँगते-माँगते मेरे माँ-बाप अन्धे होकर, तीन महीने हुए, दुनिया से कूच कर गये! नवाबी के उन लाड़लों को कोई दफनाने वाला भी नहीं था। उनकी वही हालत हुई जो लावारिस मुर्दों की हुआ करती है।

'वालिद के सामने ही लखनऊ के आवारों और शोहदों को बद-नजर मेरे ऊपर थी। उनके मरने के बाद मेरा वहाँ रहना दूभर हो गया। मेरी बेइज्जती करने की ताक में पचासों बदमाश लग गये। मुझे सहारा देने वाला कोई नहीं। लाचार होकर मुझे लखनऊ से भागना पड़ा। कलकत्ता की मैंने बड़ी तारींफ सुनी थी। सुना था, वहाँ हजारों गरीब दुखिया सुख से जीते हैं। इसीलिए मैं यहाँ भाग आयी। मगर उफ!! यहाँ भी दुनिया का वैसा ही रुख है जैसा लखनऊ में। यहाँ भी रहम करने वाले कम हैं और दोजखी कुत्तों की भरमार है। पन्द्रह दिनों से इस शहर की हालत देख रही हूँ। जिसे देखो वही आवाज कसने और बेइज्जत करने को तैयार है, मगर, खुदा के नाम पर किसी

गरीब को पनाह देनेवाला कोई नहीं। मैंने न जाने कौन-सा गुनाह किया था जिसका नतीजा इस तरह भुगत रही हूँ। मेरी किस्मत में मौत भी...'

भिखारिन की आँखों के मोती उसके रूखे और गन्दे पैरों पर बरसने लगे।

युवक के बाबूजी ने कहा, 'इस घर में रहोगी, बेटी?'

'मैं मुसलमान हूँ।'

'कोई हर्ज नहीं। मुसलमान भी आदमी है, हिन्दू भी। मैं आदमीपरस्त हूँ, हिन्दू या मुसलमानपरस्त नहीं। तुम्हें अगर कोई एतराज न हो तो इस घर में तुम्हारे लिए बहुत जगह है।'

भिखारिन की नीचे झुकी हुई आँखें ऊपर उठीं। वृद्ध की आँखों ने देखा, उस अभागिनी के नेत्रों में एक इतिहास था जिसे 'हिन्दू' नहीं, 'मुसलमान' या 'ईसाई' भी नहीं, केवल 'आदमी' ही पढ़ सकता था!

गोपालजी

नवयुवक का नाम था रामजी और उसके बाबूजी का गोपालजी। गोपालजी को उनके वंश का जो कुछ इतिहास मालूम था वह विचित्र था। जिस व्यक्ति को गोपालजी अपना पिता समझते थे उसने अपने अन्तिम समय में उन्हें बुलाकर कहा, 'बेटा! तुम मुझे 'बाबूजी' कहकर पुकारा करते हो। सन्तानहीन होने के कारण मैंने और मेरी स्त्री ने तुम्हें पुत्र की तरह पाला-पोसा और प्यार किया है। मगर तुम हमारे पुत्र नहीं हो, तुम्हारी नसों में इस गरीब व्यक्ति का रक्त नहीं बहता है। मेरी बड़ी इच्छा थी कि मैं इस बात को तुम पर प्रकट न करता और तुम्हारे हृदय को ठेस न देता, मगर अब मुझे ईश्वर के दरबार में जाना है, किसी को असत्य और अन्धकार में छोड़ देने से पाप होगा।

'तुम्हारी असली माँ क्षत्राणी थी, मैं वैश्य हूँ। तुम्हारी माता के पति एक देशी रियासत के कर्मचारी थे। उसी रियासत के राजा की नजर तुम्हारी सुन्दरी और युवती माता पर गड़ी थी। वह किसी-न-किसी तरह उन्हें भ्रष्ट करने की धुन में था, मगर तुम्हारी माँ के पति भी वीर थे, क्षत्रिय थे। इसी कारण से राजा की हिम्मत न पड़ती थी। अन्त में राजा ने एक युक्ति सोची। तुम्हारी माँ के पति को एक झूठे बहाने से, रियासत के काम से, परदेश भेज दिया, और वहीं कभी यहाँ, कभी वहाँ डेढ़ वर्ष तक रखा।

'पति को विदेश भेज उसकी पत्नी को महाराज ने पहले तो सीधे से लालच दिखाकर और भय दिखाकर अपने काबू में करना चाहा। मगर जब युक्ति से उनकी दाल न गली तब एक रात अपने गुप्त कर्मचारियों को भेज, उन्हें जबरदस्ती घर से पकड़वा मँगाया। किसी को कानोंकान ख़बर भी न हुई। उसी दिन से तुम्हारी माता के पतन का आरम्भ हुआ। फिर वह बिना किसी तरह के एतराज के महाराज की सेवा में बराबर जाया करती थीं। आखिर तुम्हारी सृष्टि हुई।

'मैं रियासत का दस रुपये महीने का एक साधारण कर्मचारी था। जिस दिन तुमने जन्म लिया उस दिन महाराज ने मुझे बुलाया और मेरे हाथों में पाँच हजार रुपये की एक थैली और तुम्हें देकर कहा कि 'इस लड़के को लेकर तुम कहीं और जाकर रहो। देखो, यह रहस्य प्रकट न करना।' बस, मैं तुम्हें लेकर कलकत्ता चला आया। मेरी स्त्री, सन्तान न होने के कारण, तुम्हें पाकर बड़ी प्रसन्न हुई और हम दोनों ने तुम्हें अपनी औलाद के नाम पर समाज में परिचित कराया, पढ़ाया-लिखाया। यह सब होते हुए भी हमारी सम्पत्ति तुम्हारी ही है। अब मैं मरने वाला हूँ, तुम अपने पिता या माता को खोजने की चेष्टा न करना। क्योंकि संसार तुम्हारी बातों को सुनकर केवल हँसेगा, तुम्हारा अपमान करेगा। अस्तु, तुम मेरे पुत्र हो, मैं तुम्हारा पिता हूँ और यह धर्ममाता ही तुम्हारी जननी है!'

यही है वृद्ध गोपालजी का वंश-परिचय। मरने के दो वर्ष पूर्व ही उनके पालक पिता ने उनका ब्याह भी कर दिया था। धर्मपिता की मृत्यु के कुछ ही दिनों बाद उनकी धर्ममाता की भी इहलीला समाप्त हो गयी। फिर गोपालजी और उनकी स्त्री के ही हाथों में उक्त वैश्य-परिवार की बची-खुची सम्पति आयी जिसे गोपालजी ने बढ़ाया भी। एक बार लोहे की दलाली में उन्हें एक लाख रुपये का मुनाफा हुआ। बस, उन्हीं रुपयों को बैंक में जमा कर, गोपालजी समाज से और व्यापार से अलग रहकर जीवन-यापन करने लगे।

समाज और व्यापार से अलग होने का एक कारण था। जब से उन्हें अपने जन्म का इतिहास मालूम हुआ तब से उनकी विचित्र अवस्था हो गयी। वह अक्सर एक ठंडी साँस लेकर अपने किसी मित्र या स्त्री से कहते कि 'यह संसार धोंखेबाजों, बदमाशों और बेईमानों का अखाड़ा है।' ईश्वर के तो नाम से उन्हें चिढ़ थी। उनकी चर्चा चलने पर गोपालजी तमककर कह उठते कि 'सब झूठ है, सब धोखा है, ईश्वर कोई नहीं है, कहीं नहीं है। गरीबों और मूर्खों पर अपनी हुकूमत कायम रखने के लिए अमीरों और दुनिया को नरक बनाने वाले समझदारों की अक्ल ने इस ईश्वर की रचना की है। सब झूठ है, सब धोखा है।'

गोपालजी के हृदय की इस स्पष्ट तसवीर को देखने के लिए समाज तैयार नहीं हुआ। एक बात और भी थी। केवल 'मानव-धर्म' के पुजारी गोपालजी किसी भी जाति के किसी भी आदमी के हाथ से खाना-पानी ग्रहण कर लेते थे। यह समाज के लिए असह्य था। मगर गोपालजी अपने धर्म के पक्के थे। वह समाज की उपेक्षा को उपेक्षा की दृष्टि से देखते और समाज के ढोंगी कर्णधारों से नफरत करते थे।

वृध्द गोपालजी की नजरों में धर्म तुच्छ था, धन तुच्छ था, ढोंगियों का समाज तुच्छ था मन्दिर, मस्जिद और गिरजे तुच्छ थे और परम तुच्छ था उक्त सारी खुरांफातों की जड़ ईश्वर।

उनका हृदय आँसुओं के आगे पिघल उठता था, दुर्बलों पर द्रवित होता था। संसार के कमजोर और अपमानित, दरिद्र और पतित उनके ईश्वर थे । मनुष्यत्व उनका धर्म था!

रामजी

रामजी जिस समय पाँच वर्ष का अज्ञान बालक था उसी समय उसकी माता गोपालजी की पत्नी का देहान्त हो गया था। तब से बराबर गोपालजी के ही प्रेम से उसका पालन-पोषण हुआ। पिता का पुत्र और पुत्र का पिता पर अलौकिक प्रेम था। स्त्री का देहान्त हो जाने के बाद, चाहते तो, गोपालजी दूसरी शादी कर सकते थे, मगर उन्होंने वैसा नहीं किया। उनका कहना था कि विवाह का मुख्य उद्देश्य प्रेम होना चाहिए, वासना नहीं। स्त्री के न रहने पर भी उनके प्रेम का पात्र, उनका और उनकी पत्नी का सम्मिलित स्नेह-चित्र रामजी तो था ही। फिर दूसरा विवाह करने की आवश्यकता?

स्त्री की मृत्यु के बाद, पहले कुछ दिनों तक, गोपालजी ने एक अधेड़ ब्राह्मणी को रामजी की देख-रेख और भोजन तैयार करने के लिए नौकर रख लिया था। मगर बाद को यह अनुभव कर कि ब्राह्मणी देवी 'राम दोहाई' और 'भगवान् जानें' की आड़ में रामजी के हिस्से का दूध, घी और मक्खन अपने या अपने बच्चों के मसरफ में लाती हैं, उन्होंने उसे निकाल बाहर किया और स्वयं रामजी की धात्री और माता बन बैठे। पुत्र का नहलाना-धुलाना, खाना पकाना और खिलाना वह स्वयं करने लगे। सहायता के लिए एक नौकर भी रख लिया। छुटपन से लेकर वयस्क हो जाने तक बराबर वह रामजी को अपने साथ छाती से लगाकर सुलाते थे। उनका 'राम' उनकी दृष्टि से इस दुखमय, पापमय और हाय-हायमय संसार का सर्वश्रेष्ठ सुख था। रामजी को देखते ही वह एक अद्वितीय और अनिर्वचनीय सुख का अनुभव करते, प्रसन्न-वदन हो जाते थे। राम को पढ़ाने का उन्होंने यथा-शक्य बहुत सुन्दर प्रबन्ध कर रखा था। वह

कलकत्ता विश्वविद्यालय की प्रवेशिका परीक्षा पास कर द्वितीय वर्ष श्रेणी में पढ़ रहा था। कालेज में उसने अँग्रेजी के साथ संस्कृत ले रखी थी और घर पर गोपाल जी के एक पुराने मित्र मौलवी साहब उसे फारसी पढ़ाया करते थे।

ईश्वरद्रोही गोपालजी का हृदय-सर्वस्व 'राम' स्वभावत: हिन्दू था, ईश्वर को मानने वाला था। स्वयं देवी-देवताओं में विश्वास न रखते हुए भी, पुत्र के आग्रह से, वह राम-मन्दिर में भी जाते थे और काली-बाड़ी में भी। कभी-कभी नास्तिक पिता और आस्तिक पुत्र में 'ईश्वर' को लेकर बड़ा सुन्दर विवाद हुआ करता था, जिसमें विजयी होने पर भी, गोपालजी को पराजय स्वीकार करनी पड़ती। परन्तु तब जब पुत्र पिता के गले में हाथ डाल, कपोल से कपोल सटाकर कहता था कि 'बाबूजी, जब तक तुम 'राम-राम' न कहोगे मैं भोजन न करूँगा, राम हमारे भगवान हैं।' ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होने पर गोपालजी मुसकराकर 'राम-राम' कहकर कहने लगते कि 'राम तो मेरा दुलारा और प्यारा पुत्र है। भला 'राम-राम' कहने में मुझे आपत्ति हो सकती है?'

मौलवी साहब

अभी कल तक कलकत्ता में जिस दंगे का तांडव नृत्य हो रहा था उसके आरम्भ होने के पन्द्रह दिनों पूर्व गोपालजी के पुराने मित्र और रामजी के फारसी-शिक्षक मौलवी सदाअतुल्ला और ईश्वरद्रोही गोपालजी में 'हिन्दू और मुसलमान' विषय पर खासी बहस हुई। बहस का आरम्भ मौलवी साहब ने इस प्रकार किया था :

'आपकी भिखारिन बेटी कैसी है**?**'

गोपाल - 'भली-चंगी और प्रसन्न। क्यों?'

मौलवी - 'मुहल्ले के मुसलमान जानते हैं कि आपकी बेटी हिन्दू नहीं है।'

गोपाल - 'तो? इसका अर्थ?'

मौलवी - 'इसका अर्थ तो मैं नहीं जानता। हाँ, लोग आपस में इस बात की सलाह कर रहे हैं कि उसे आपसे माँगकर फिर से दीन इस्लाम में मिला लें। मुसलमान अपनी औलाद को हिन्दू के घर में, हिन्दू की तरह, नहीं देख सकते।'

'हा हा हा हा!' रुक्ष अट्टहास करते हुए ईश्वर-द्रोही ने कहा, 'उस दिन मुसलमान कहाँ थे जब भिखारिन भूखों मर रही थी? उस दिन दीन इस्लाम कहाँ था जब अपने को मुसलमान कहनेवाले कुत्ते उसके पाक दामन को गन्दा करने पर उतारू थे? अरे यारो!

बुग्ज, शैतानी, बदमाशी और लड़ाई का नाम 'दीन इस्लाम' नहीं है। काहे को खुदा और मजहब को बदनाम करने पर कमर कसते हो?'

'यह बदमाशी नहीं है जनाब, इसे अपने मजहब की कद्र करना कहते हैं।'

'इनसान का मजहब इनसान की कद्र करना है। जिस धर्म में आदमी की इज्जत नहीं, वह धर्म नहीं धोखा है।'

'मुसलमान का धर्म है मुसलमान की कद्र करना। जो मुसलमान नहीं, वह काफिर है।'

'ठहरिए!' नास्तिक ने उत्तेजित होकर कहा, 'किसी को कांफिर समझना आदमीयत का अपमान करना है। वैसे तो मैं किसी भी धर्म और किसी भी ईश्वर को नहीं मानता, मगर...मगर...'

'मगर?'

'मगर...अगर कोई अपने को मुसलमान, ईसाई या कुछ और कहकर और मुझे 'हिन्दू' समझकर अपमानित करना चाहे, तो मुझसे बढ़कर कोई दूसरा 'हिन्दू' नहीं। वैसी हालत में मैं बिक जाऊँगा, मगर 'हिन्दू' रहँगा...मर जाऊँगा, मगर 'हिन्दू' रहूँगा। वैसी हालत में अपमान 'हिन्दू' का नहीं, 'आदमी' का होता है। मैं आदमी हूँ। मौलवी साहब! मेरी नजरों में मजहब की उतनी ही इज्जत है जितनी पोशाकों की। लुंगी लगाने वाला धोती पहनने वाले को काफिर नहीं कह सकता। पगड़ी पहनने वाला तुर्की टोपी वाले को म्लेच्छ नहीं कह सकता। अपनी-अपनी पसन्द है। आप दीन इस्लाम को मानते हैं, लुंगी पहनिए, राम हिन्दू धोती पहने। मैं कुछ भी नहीं हूँ, आदमी हूँ - जो जी में आएगा पहनूँगा। पोशाकों के लिए लड़ना मुसलमानपन नहीं, हिन्दूपन भी नहीं, गधापन है!'

जरा गम्भीर होकर मौलवी साहब ने पूछा, 'कलकत्ता में अगर दंगा हो तो आप क्या करेंगे?'

'कमजोरों की तरफदारी, बेगुनाहों की मदद करूँगा और बदमाशों से लड़ूँगा।'

'बदमाश कौन होगा?'

'जो लड़ाई छेड़ेगा। वह हिन्दू हो या मुसलमान, कोई चिन्ता नहीं।'

जिस समय मौलवी और ईश्वरद्रोही में बहस हो रही थी उसी समय मकान के भीतर भिखारिन, जिसे अब लोग 'नवाबजादी' कहकर पुकारते थे और रामजी में इस प्रकार बातें हो रही थीं।

'नवाबजादी!'

'नवाबजादी के मालिक आका!'

'मुझे मालिक क्यों कहती हो?'

'मुझे नवाबजादी क्यों कहते हो?'

'तुम नवाबजादी नहीं हो? तुम्हारे दादा नवाब नहीं थे?'

'तुम मेरे मालिक नहीं हो? तुमने मुझे पनाह नहीं दी है?'

'अच्छा भाई, तुम नवाबजादी नहीं, 'तुम' हो।'

'अच्छा भई, तुम भी मालिक नहीं, 'तुम' हो!'

'तुम तरकारी लाने न जाया करो।'

'क्यों?'

'मछुआ बाजार के मुसलमान तुम्हें हिन्दू के घर से निकालने की धुन में हैं।'

'वाह रे निकालने की धुन में हैं! अँग्रेजी राज नहीं, नवाबी है?'

'अच्छा, तुम मुसलमान क्यों नहीं हो जातीं?'

'तुम मुसलमान क्यों नहीं हो जाते?'

'मैं हिन्दू हूँ और हिन्दू रहने में फख्र समझता हूँ।'

'मैं भी हिन्दू हूँ और हिन्दू रहने में फख्र समझती हूँ। जिस धर्म में बाबूजी जैसे लोग हों और 'तुम' हो, वह धर्म मेरी नजरों में दुनिया के सब धर्मों से बेहतर है।'

'दुनिया की नंजरों में तुमने हमें मुसलमान बना दिया है।'

'और तुमने हमको हिन्दू नहीं बना दिया? तुमने...'

श्रीमती 'तुम' के मुख पर हाथ रखकर श्रीमान् 'तुम' ने कहा, 'चुप !'

श्रीमान् 'तुम' के मुख पर हाथ रखकर श्रीमती 'तुम' ने कहा, 'चुप !'

दंगे में

कलकत्ता के दंगे का तीसरा दिन था। वृध्द गोपालजी अपनी उसी बैठक में उदास मुँह बैठे थे जिसमें रामजी और भिखारिन की प्रथम भेंट हुई थी। भिखारिन नवाबजादी भी गोपालजी के सामने कुर्सी पर बैठी थी। उसके मुख से भी उदासी और अप्रसन्नता फूटी पड़ती थी।

'बेटी!' वृद्ध ने रुध्द कंठ से कहा, 'मेरा राम आर्यसमाज का जुलूस देखने केवल एक घंटे के लिए गया था, मगर अभी तक नहीं लौटा। जरूर उस पर कोई-न-कोई विपत्ति पड़ी है, नहीं तो, बिना अपने बूढ़े बाप के राम को चैन नहीं पड़ता।'

इसी समय किसी ने दरवाजा खटखटाया। नवाबजादी द्वार खोलने के लिए उठी, मगर बूढ़े ने रोका, 'तुम न जाओ नवाबजादी, मुमकिन है कोई बदमाश हो। मैं ही जाता हूँ।' दरवाजा खोलने पर गोपालजी का नौकर नंदन भीतर आया। उसके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। वह इतनी लम्बी-लम्बी साँसें ले रहा था मानो एक साँस में भागता हुआ आया है।

वृद्ध ने पूछा, 'क्या खबर, नंदन? राम का कुछ पता चला?'

नौकर नीचे सिर करके चुपचाप खड़ा हो गया।

'बोलता क्यों नहीं रे? मेरा राम कहाँ है?'

नौकर रोने लगा। गोपालजी का चेहरा, नौकर की हालत देखकर, काला पड़ गया। उन्हें ऐसा मालूम पड़ने लगा मानो उनके ऊपर क्षण-भर बाद निश्चित वज्रपात होने वाला है।

'नंदन! नंदन!! बोलता क्यों नहीं? वह कहाँ है?'

नवाबजादी ने रुद्ध कंठ और भयभीत हृदय होकर पूछा।

नंदन ने धीरे-धीरे कहना आरम्भ किया, 'बाबूजी, राम भैया को...।' इस बार भी वह बात पूरी न कर सका। अबकी जरा डपटकर गोपालजी ने पूछा, 'साफ-साफ क्यों नहीं कहता? बेवकूफ।'

नंदन ने अपनी सारी शक्ति मुख में एकत्र कर साफ-साफ कहा, 'उस दिन जब आर्य समाज के जुलूस पर मुसलमानों ने धावा किया और हिन्दुओं को खूब पीटा तब राम भैया को उनके एक मित्र ने, जो अफीम चौरस्ते पर रहते हैं, अपने घर पर रोक रखा। दूसरे दिन मुसलमानों की ज्यादती बढ़ती देख उनके मित्र और वह अनेक दूसरे हिन्दुओं के साथ मुसलमानों का सामना करने के लिए निकले। उन लोगों ने कई जगहों पर मुसलमान गुंडों का सामना किया, उन्हें हराया और मार भगाया। आज सुबह राम भैया आपसे मिलने के लिए वहाँ से इधर को आ रहे थे, उसी समय एक मुलसमान गुंडे ने उनके पेट में छुरा भोंककर उन्हें मार डाला। इसके बाद उनका क्या हुआ, वह मुझे मालूम नहीं, इतनी ख़बर भी बड़ी मुश्किल से मिली है।'

'उन्हें मुसलमानों ने मार डाला! उन्हें-उन्हें !' कहकर नवाबजादी फूट-फूटकर रोने लगी। मगर गोपालजी गम्भीर थे। उनकी आँखों में आँसू नहीं, चिनगारियाँ थीं। क्षण-भर बाद वह अपने स्थान से उठे और नौकर से बोले, 'घर में जितने शस्त्र हों मेरे सामने लाओ!'

थोड़ी देर में दो-तीन डंडे, दो तलवारें और एक तमंचा गोपालजी के सामने नौकर ने ला रखा। वृद्ध ने पहले तलवार को उठाकर दो-एक बार घुमा-फिराकर अंदाजा। इसके बाद कपड़े पहनना आरम्भ किया। कपड़े पहनते-पहनते उनकी नजर रोती हुई नवाबजादी पर पड़ी। उन्होंने कहा, 'बेटी, अब यह घर तुम्हारा है। मैं अपने राम की तलाश में जाता हूँ। अगर मिला तो लौटूँगा, नहीं तो यही हमारी आखिरी भेंट है।'

गोपालजी की ओर अश्रुपूर्ण, रक्त-नेत्रों से देखकर नवाबजादी ने कहा :

'मैं भी चलूँगी।'

'तुम कहाँ चलोगी?'

'उन्हें ढूँढ़ने।'

'बड़ा मुश्किल काम है, नवाबजादी। तुम औरत हो। मेरे राम को मेरे हिस्से में छोड़ दो। मैं ही ढूँढूँगा।'

'नहीं, यह कदापि नहीं हो सकता। जहाँ आप होंगे वहीं पर मैं भी होऊँगी, ठहरिए।'

नवाबजादी घर के भीतर गयी और थोड़ी देर बाद मर्दाने कपड़े पहन और हाथ में एक लम्बा छुरा लेकर वृद्ध के सामने आयी। नवाबजादी के मर्दाने कपड़े वही थे जिन्हें रामजी पहना करता था। राम ही की तरह गोरी, लम्बी और सुन्दरी नवाबजादी को पुरुष-वेश में देखकर और राम को स्मरण कर बूढ़े ईश्वर-द्रोही की आँखों के आँसू, बाढ़ की नदी की तरह, उमड़ चले।

संसार से बहुत दूर रहनेवाले राम की तलाश में ईश्वर-द्रोही और नवाबजादी, शस्त्रों से सुसज्जित होकर, चल पड़े। उस समय वृद्ध गोपालजी के मुख पर वही भाव था जो किसी समय 'केसरिया बाना' धारण करने पर राजपूतों के मुख पर होता था। नवाबजादी के बदन पर वही तेज था तो 'जौहर' के वक्त राजपूतनियों के बदन पर दिखाई देता था!

' युद्धं देहि '

वृध्द वीर गोपालजी और नवाबजादी उस गली को प्राय: पार कर चुके थे कि पीछे से पाँच-सात मुसलमानों ने उन पर धावा किया। 'अली! अली ! अल्लाह! अल्लाह ! मारो सालों को! दोनों के दोनों हिन्दू हैं, काफिर हैं!'

हाथ का डंडा सँभालकर और नवाबजादी को पीछे कर गोपालजी खड़े हो गये और डपटकर उन गुंडों से कहने लगे,

'हत्यारो! 'अली-अली' और 'अल्लाह-अल्लाह' क्यों पुकारते हो? 'शैतान शैतान' का नारा लगाओ! खून का प्यासा खुदा शैतान है, ईश्वर नहीं। बदमाश पीछे से धावा करते हैं! खड़े हो जाओ सामने और एक-एक कर निपट लो। तुम सात हो, हम दो। तुममें से एक भी जीता रह जाए तो कहना!'

लम्बी तलवार को बगल से खींच बूढ़ा ईश्वरद्रोही शेर की तरह उन गुंडों पर टूट पड़ा। गुंडे भी सावधानी से सामना करने लगे। दोनों ओर से प्रहार पर प्रहार होने लगे। देखते-देखते उस बूढ़े शेर ने तीन मुसलमानों को जमीन पर सुला दिया। इसी समय उनके पीछे से आवाज आयी, 'मरी! मरी बाबूजी!!'

गोपालजी ने पीछे घूमकर देखा, दो मुसलमान नवाबजादी के कोमल शरीर पर बड़ी निर्दयता से छुरे चला रहे थे। जब तक वह वीर उस अबला की सहायता के लिए आगे बढ़े तब तक उन दुष्टों ने उसका काम तमाम कर डाला! गोपालजी झपटकर

नवाबजादी के पास पहुँचे। उसकी दोनों आँखें खुली थीं, पर उनमें दर्शन-शक्ति नहीं थी। इसी समय एक मुसलमान ने, पीछे से, गोपालजी की बगल में लम्बा छुरा भोंक दिया। वह 'हाय!' करके घूम पड़े। उन्होंने तलवार का एक ऐसा सच्चा हाथ मारा कि वह मुसलमान भी दो होकर नाचने लगा। गुंडों में भगदड़ पड़ गयी।

गोपालजी को गहरी चोट लगी थी। उनकी अँतड़ियाँ बाहर निकली आ रही थीं। उन्हें भीतर की ओर ठेलकर बूढ़े ने उसी घाव पर अपने दुपट्टे को कसकर बाँधा और विक्षिप्त की तरह आगे पैर बढ़ाया।

कुछ दूर चलने के बाद गली पार हो गयी, सड़क मिली। सड़क पर एक सार्जेंट के साथ पाँच-सात सिपाही खड़े थे। उन्होंने उस वृध्द वीर को रोककर पूछा, 'कहाँ जा रहे हो?'

'अपने राम को खोजने।' लड़खड़ाती आवाज से गोपालजी ने कहा, 'आज अगर मेरा राम न मिला तो कलकत्ता के सारे मुसलमानों को मार डालूँगा। मस्जिदों को भस्म कर दूँगा। बेटा राम ! प्यारे राम !'

घाव बहुत गहरा था। वृद्ध वहीं गिरकर ढेर हो गया!

उस सड़क के आस-पास की ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओं में बहुत देर तक ईश्वर-द्रोही गोपालजी के अन्तिम शब्द गूँजते रहे - 'बेटा राम ! प्यारे राम!'

https://www.hindiadda.com/ishvaradrohi/